आर्योदय

ARYODAYE

LET US LOOK AT EVERYONE WITH A FRIENDLY EYE

- VEDA

Read Aryodaye on line -- www.aryasabhamauritius.mu

Aryodaye No. 322 ARYA SABHA MAURITIUS *1st Dec. to 14th Dec. 2015*

पाप की कमाई हैं जहाँ विषाद, अपयश और पतन हैं वहाँ

ओ३म् या मा लक्ष्मीः पतयालूरजुष्टाभिचस्कन्द वन्दनेव वृक्षम् ।
अन्यत्रास्मत् सवितस्तामितो धा हिरण्यहस्तो वसु नो रराणः।।

अथर्ववेद ७/११५/२

LE BIEN MAL ACQUIS ENTRAINE DANS SON SILLAGE LA DISGRACE, LE DESHONNEUR ET LA RUINE

Om ! yā mā lakshmiha patayālū-rajushtā-bhichaskanda vandaneva vriksham.
Anyatrāsmat savitastāmito dhā hiranyahasto vasu no rarānaha.

Atharva Véda 7/115/2

Glossaire / Shabdārtha

yā - ce, que; **patayālūha** – qui mène vers la chute / l'échec, la décadence, la ruine; **ajusta** – méprisable, détestable, indigne; **lakshmi** – la richesse; **mā** – à moi, envers moi; **abhichaskanda** – m'a surpris, m'a assailli, m'a harcelé, m'a pris au dépourvu; **iva** – comme si; **vandanā** – Dans le contexte de ce verset : 'Vandanā' signifie les lierres / les lianes / les plantes grimpantes; **vriksham** – sur un arbre; **savitaha** – O Dieu ! ; **hiranyahastaha** – le détenteur de l'or et de toutes les ressources précieuses; **vasu** – la richesse; **rarānaha** – ayant accordé ou attribué quelque chose à quelqu'un; **itaha** – d'ici; **asmat** – de nous; **anyatra** – ailleurs; **tām** – ce, cela; **dhāha** – garder, conserver.

Interprétation / Anushilan

Ce verset de l'Atharva Véda a trait à la formation de caractère et de l'intégrité de l'homme. Il y a beaucoup d'emphase sur la moralité.

Il faut que l'on sache aussi que par le développement des facultés intellectuelles et les autres qualités y relatives, l'on devient lettré, mais pas éduqué. Ce n'est que par la culture des valeurs humaines, voire la moralité, que le lettré devient une personne éduquée.

La religion védique stipule que l'on ne doit acquérir la richesse ou les biens que par des moyens honnêtes. Elle nous met en garde contre toute fortune accumulée d'une façon malhonnête qui n'apporte dans son sillage que le déshonneur et la ruine.

De nos jours, nous vivons dans un monde moderne et ultra- matérialiste. Quand nous faisons un constat de la vie des personnes jouissant des biens mal acquis, vivant dans l'opulence, où l'argent y coule à flots, nous éprouvons une certaine appréhension. Cela nous interpelle. Nous sommes quelque peu confus.

Nous commençons à nous douter de l'enseignement sacré des Védas quand nous voyons des gens honnêtes ne pas réussir dans la vie et souffrir presque tout le temps, tandis que les personnes malhonnêtes mènent une vie luxueuse. Nous sommes tout à fait désorientés. Nous cherchons une réponse à cet état des choses.

Et les Védas apportent la réponse appropriée à cette grande question. Ses enseignements nous éclairent et nous indique la bonne voie à suivre dans notre vie. Ils préconisent que la richesse mal gagnée peut nous transmettre temporairement un éclat de l'élégance et de prestige, mais à la longue, ce sera suivi de l'obscurité, de la désolation, du malheur et du châtiment du Seigneur, occasionnant notre chute.

En conséquence les Védas nous conseillent fortement de nous contenter de ce qu'on gagne à la sueur de notre front, c'est-à-dire, honnêtement. La grande fortune, gagnée de façon illicite, nous mènera définitivement vers la disgrâce, le découragement, la honte et l'échec.

Dans ce verset le fidèle sollicite la protection et l'aide du Seigneur, afin de ne pas succomber à la tentation d'accumuler la richesse par des moyens frauduleux. Si cette tendance persiste en lui et n'est pas maîtrisée aussitôt, elle aura un effet néfaste sur sa personne et pourra accaparer son esprit, tout comme les lierres (les lianes) qui, en grimpant sur un arbre, l'enlacent et le tiennent dans leur emprise. En conséquence il tombera dans la disgrâce, dans l'adversité et il deviendra lui-même la cause de sa propre décadence c'est-à-dire, son autodestruction.

Pour terminer sa prière, le fidèle s'en remet ainsi à Dieu, qui est le détenteur de l'or, de toutes les choses précieuses et de toutes les ressources du monde, et le prie de lui conférer toujours avec sa bénédiction pour son travail honnête, une richesse saine, qui apportera le bonheur, la paix et la prospérité dans sa vie.

N. Ghoorah

नारी का उत्तरदायित्व

डॉ० उदय नारायण गंगू, ओ.एस.के, आर्य रत्न - प्रधान आर्य सभा

गत मंगलवार ८ दिसम्बर २०१५ को 'चिरंजीव भारद्वाज आश्रम', बेलमार-स्थित 'सुमंगली देवी यज्ञशाला' में यज्ञ के पश्चात् एक विचार-गोष्ठी सम्पन्न हुई। गोष्ठी का विषय था - 'नारी का उत्तरदायित्व'। इस विषय के अन्तर्गत कई विद्वान्-विदुषियों ने अपने-अपने विचार व्यक्त किये। वर्तमान में व्याप्त अनेक सामाजिक समस्याओं को रेखांकित किया गया। इन समस्याओं के निराकरण में स्त्री-पुरुष दोनों के योगदान वांछनीय हैं ।

एक समय था कि नारी का उत्तरदायित्व केवल घर के काम-काज तक सीमित था। आज स्थिति बदल गई है। स्त्री को घर के अतिरिक्त बाहर का काम भी सम्भालना पड़ रहा है। वे घर के साथ-साथ समाज और राष्ट्र की सेवा में भी जुट गई हैं। ऐसी परिस्थिति में उनका उत्तरदायित्व बहुत ही बढ़ गया है।

हमारा जैसा नाम होता है, हमें वैसा ही काम करना पड़ता है। यदि हमें 'शिक्षक' नाम दिया गया तो निश्चयतः हमारी दिन-चर्या में शिक्षण-कार्य जुड़ गया। इसी प्रकार स्त्री को जो-जो नाम दिये जाते हैं, उन नामों के अनुरूप ही उन्हें अपने उत्तरदायित्व को पालन करना पड़ता है।

यजुर्वेद के आठवें अध्याय के तिरालीसवें मन्त्र में नारी को अनेक नामों से सम्बोधित किया गया है। मन्त्र इस प्रकार है –

इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतिऽदिते सरस्वति महि विश्रुति ।
एता ते अघ्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सृकृतं ब्रूतात् ।

इस मन्त्र में नारी को ग्यारह नाम दिये गए हैं। सबसे पहले उसे 'इडा' कहा गया। 'इडा' उस नारी को कहते हैं, जो प्रशंसनीय गुणों से भरपूर होती है। भारतीय संस्कृति में श्री राम की भार्या सीता को नारियों में आदर्श माना जाता है, क्योंकि वे सद्गुणों की खान थीं। सीता जैसी नारी को ही वेद में 'इडा' कहा गया है। जो इडा होती है, उसकी बड़ाई सभी करते हैं। वेद का उपदेश है कि स्त्री इडा बने।

शेष भाग पृष्ठ २ पर

सम्पादकीय

भोजन का सुधार

शरीर का मुख्य आधार भोजन है। स्वस्थ रहने के लिए शाकाहार का विशेष महत्व है। आहार-शुद्धि से बुद्धि पवित्र होती है। शुद्ध और तीव्र बुद्धि से मन, विचार तथा सोच में पवित्रता आती है। शरीर नीरोग रहता है। और वह स्वस्थ आदमी प्रसन्न रहता है।

शरीर को स्वस्थ, प्रसन्न, बलिष्ट और उत्तम बनाने के लिए संतुलित भोजन का सेवन करना अनिवार्य है। मिला-जुला भोजन खाने से प्रोटीन, विटामिन, काल्सीयम, चर्बी आदि शरीर में विद्यमान रहते हैं और रक्त की कमी नहीं होती है।

संतुलित भोजन हमारे मन, विचार, संस्कार तथा आचरण का आधार है। भोजन बिगड़ने से आचार-विचार, मन-बुद्धि स्वास्थ्य आदि विकृत हो जाते हैं। दुनिया में बहुत से लोग ऐसे हैं, जो सिगरेट, शराब, मांस-मछली और कई हानिकारक पदार्थों का सेवन करके रोगी हो जाते हैं। ऐसे रोगी व्यक्ति अर्जित धन का सुख-भोग नहीं कर पाते हैं। रोगों के इलाज में दवादारू के पीछे सारी सम्पत्ति लुटा देते हैं, फिर भी बड़ी कठिनाई से उन्हें राहत मिलती है। अतः भोजन जितना सात्त्विक, सरल संतुलित और प्रकृति के अनुकूल होगा, उतना ही शरीर के लिए हितकारी होगा।

शरीर को स्वस्थ रखना मनुष्य का परम-धर्म है। स्वस्थ शरीर भगवान की सर्वोत्तम देन है, सबसे बड़ा वरदान है। जीवन की उन्नति तथा सुख-प्राप्ति में हमारे स्वास्थ्य का सबसे बड़ा स्थान है। एक अस्वस्थ करोड़पति की अपेक्षा एक स्वस्थ भिखारी अधिक सुखी होता है। एक धनवान रोगी बढ़िया भोजन पाकर भी उसे खा नहीं सकता है। उसे पचा नहीं सकता है इसीलिए अपने भोजन का सुधार करना हमारा कर्त्तव्य है।

स्वस्थ रहना एक कला है। यह कला सबको नहीं आती है। आज बहुत से इंसान प्रकृति के अनुकूल खान-पान एवं दिनचर्या आदि से दूर होते जा रहे हैं। तनावपूर्ण जीवन व्यतीत करके कई प्रकार की चिन्ताओं में डूबे हुए दिखाई देते हैं। उनके दैनिक जीवन में कई प्रकार की समस्याएँ नज़र आ रही हैं। उधर प्रकृति-विरुद्ध दूषित भोजन के कारण उनकी आयु घटती जा रही है। अल्पावस्था में ही कितने लोग रोग ग्रस्त होकर मौत का शिकार हो जाते हैं।

प्रकृति का सहयोग पाने के बदले मानव प्रकृति के नियमों का उलंघन करने लगा है। ब्रह्म-मुहूर्त में उठने, योग साधना तथा ईश्वर-भक्ति और स्वाध्याय करने का नियम बिगड़ गया है। काम-काज करने तथा खान-पान का ढंग बदलता जा रहा है। रात्रि में सोने का समय भी ख्याल नहीं रहता, इसीलिए आज शारीरिक तथा मानसिक रोग तेज़ी से बढ़ते जा रहे हैं।

शारीरिक रक्षा के लिए जब शुद्धाहार ग्रहण किया जाता है, तब शरीर बल-युक्त और स्वस्थ रहता है मांस-मछली तथा होटल के चटपटे भोजन करने से शरीर शीघ्र बीमार हो जाता है। बिना समय पर खाते रहने से पाचन-शक्ति-खराब हो जाती है धीरे-धीरे भूख चली जाती है, फिर शरीर में निर्बलता आ जाती है और कई प्रकार की बीमारियों से हम तड़पते रहते हैं।

जीवित रहने के लिए निरंतर समय पर ही भोजन लेना प्रकृति का नियम है। अगर स्वस्थ रहना है, तो नियमित रूप से उचित भोजन का सेवन करें, जो शरीर के लिए लाभदायक सिद्ध हो। भोजन-सुधार से ही नीरोगता प्राप्त होती है। एक नीरोग, बलिष्ठ और सज्जन के बल पर परिवार, समाज और राष्ट्र का उत्थान निश्चित है।

यह ध्यान रहे कि –

अपना भोजन दवाई की तरह जीवन भर खाएँ ।
अन्यथा आपको दवाइयाँ जीवन भर भोजन की तरह खानी पड़ेंगी।

बालचन्द तानाकूर

सामाजिक गतिविधियाँ

सत्यदेव प्रीतम, सी.एस.के., आर्य रत्न

दीपावली महोत्सव एवं ऋषि निर्वाण दिवस

आज १३२ वर्ष हुए ऋषि दयानन्द का निर्वाण हुआ था तब से आज तक दीपोत्सव के मौक़े पर हम दयानन्द के बताये हुए मार्ग पर चलने वाले ऋषि द्वारा किये गये कार्यों को याद करते हैं। कृतज्ञता प्रकट करते हैं और सामाजिक सेवा करने के लिए प्रेरणा लेते हैं।

हर साल की तरह इस साल भी आर्य सभा के तत्वावधान में सभी मंदिरों में, ज़िला समिति के स्वर पर एक केंद्रीय जगह पर और राष्ट्रीय स्तर पर दो घण्टों का कार्यक्रम पेश करते हैं जो स्थानीय दूदर्शन द्वारा प्रसारित होता है।

गत रविवार को कात्रबोर्न के ओलिये आर्य मंदिर में उक्त समारोह मनाया गया जिसमें पूरे ज़िले के प्रतिनिधि उपस्थित थे।

यज्ञ से कार्य शुरू किया गया तत्पश्चात् ओलिये समाज के अध्यक्ष श्री हरिश्चन्द्र दीरपोल ने उपस्थित जनों का स्वागत किया फिर बारी-बारी से ज़िला परिषद् के मंत्री श्री सोनालाल रामदोस ने भाषणों एवं भजनों का कार्यक्रम प्रस्तुत किया। भाषण – श्री रवीन गाऊड, श्रीमती यालिनी रघु-यालापा, श्री सत्यदेव प्रीतम, श्री बालचन्द तानाकूर, प्रो० सुदर्शन जगेसर, डा० उदयनारायण गंगू और भजन प्लेन विलियेम्स ज़िला परिषद्, डेरबी आर्य समाज और त्रेफ़ आर्य समाज की मण्डलियों द्वारा। अन्त में धन्यवाद समर्पण श्रीमान् रवीन्द्र शिवपाल द्वारा हुआ।

और एक शताब्दी मनाई गई

गत रविवार दि० २९.११.१५ को दोपहर दो बजे नूवेल देकुर्वेत आर्यसमाज

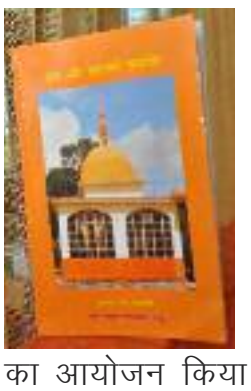

और महिला आर्यसमाज ने मोका आर्य ज़िला परिषद् के सहयोग से आर्य सभा मोरिशस के तत्वावधान में अपने समाज की शताब्दी मनाने के परिप्रेक्ष्य में एक भव्य समारोह का आयोजन किया था । समाज की स्थापना एक शती पूर्व सन् १९१४ में डा० चिरण्जीव भारद्वाज के सहयोग से हुई थी। उसी वर्ष वे भारत लौटने की तैयारी में लगे हुए थे और प्रथम संन्यासी स्व० स्वतन्त्रानन्द का आगमन हुआ था ।

समारोह का मुख्य अतिथि वर्तमान सरकार की शिक्षा मंत्री श्रीमती लीला देवी दुखन थी जिसने अच्छी हिन्दी में अपना भाषण दिया। और अन्त में आंग्ल भाषा में उपसंहार किया । उसी स्थल पर १९६० के वर्षों में गुरुकुल की स्थापना हुई थी पर दुर्भाग्यवश वह चल नहीं पाया। गुरुकुल निर्माणार्थ महेश सरदार ने ज़मीन प्रदान की थी उसी की याद में मंत्री जी ने एक नाम पट का अनावरण किया।

गत साल जो शताब्दी मनाई गई थी उसी से संबंधित एक पुस्तक 'और एक शताब्दी समारोह' लिखी गयी थी जिस का लोकार्पण शिक्षा मंत्री के कर कमलों द्वारा हुआ। लगे हाथ गुरुकुल समाज के मान्य प्रधान श्री रामकरण जोखू द्वारा प्रणीत पुस्तकें – पाठ्य पुस्तक (the Text Book) और दूसरी पुस्तक "Life and Love" का भी विमोचन किया गया।

समारोह के आरम्भ में स्कूली बच्चों द्वारा वैदिक प्रार्थना हुई और महिला समाज की अध्यक्षा श्रीमती वेदावती बिजाधर जी ने स्तुति, प्रार्थना व उपासना के आठ मंत्रों को उच्चारित किया। इन वेद मंत्रों के सिवा महिलाओं व बच्चों द्वारा रोचक कार्यक्रम पेश किये गये।

आर्य सभा की ओर से प्रधान डा० उदयनाराण गंगू, उपप्रधान बालचन्द तानाकूर, मंत्री हरिदेव रामधनी, श्रीमती रत्नभूषिता पुच्वा, और श्रीमती यालिनी रघु यलापा भी कार्य की शोभा बढ़ा रही थी।

छठी वर्षगाँठ

फूलबसिया आश्रम छः वर्ष का हो गया। पिछले शनिवार दि० ६.१२.२०१५ को उसका छठा स्थापना दिवस धूमधाम से मनाया गया। आर्यसभा के प्रधान, उपप्रधान और कई अन्तरंग सदस्य उस समारोह में उपस्थित थे। रामभजन परिवार ने फूलबसिया आश्रम कमिटि को अपना सुन्दर सजा-धजा सुन्दर भवन सेवा में सुपुर्द किया था जिसमें समारोह सुगमता पूर्वक सम्पन्न हुआ।

उस समारोह को अच्छे ढंग से मनाने के लिए एक सुन्दर रोचक कार्यक्रम बनाया गया था जिसमें हिन्दू, तमिल, तेलुगू आदि भाषाओं में भजन रखे गए थे। इनके अलावा नृत्य आदि का प्रदर्शन भी हुआ। बीच-बीच में

अतिथियों द्वारा भाषण भी हुए। भजन दाताओं में आश्रम के मानेजर रविन जगरनाथ, शान्ति मोरिशस के श्री दीपक बालगोबिन, संरचना मन्त्रालय के स्थायी सचिव श्री बगन जी, और सभा की ओर से डॉक्टर गंगू और अन्त में सभा उपप्रधान श्री सत्यदेव प्रीतम ने धन्यवाद समर्पण किया। समारोह की समाप्ति शान्तिपाठ से हुई पर कार्यक्रम समाप्त नहीं हुआ था। आश्रम के एहाते में वृक्षारोपण हुआ। अन्त में सभी उपस्थित लोगों को मिठाई आदि से सत्कार किया गया।

ARYA SABHA MAURITIUS

Books available at Arya Sabha Mauritius

cont. from last issue

85. Jivan Charit Swami Dayanand
86. Jivan Charit Swami Darshnanand
87. Jivan Charit Swami Shraddhanand
88. Pandit Lekhram -Swami Shraddhanand
89. Dharma ka Aadi shrot
90. Bharat Bharti
91. Dharmik Shiksha part 1 to Part 8
92. Vyawahar Bhanu
93. Sanskrit Shiksha Part 1,2 & 3 -Dr Kapildev Teewari
94. Prashnanopnishad
95. Geeta (Geeta Press Gonakhpur)
96. Yajurved Samhita (Hard bound)
97. Back to the Vedas
98. Beliefs of Arya Samaj
99. Rational Faith in God
100. Vedon ki aur
101. Maharshi Dayanand ki jaroorat kyon
102. Light of Truth (hard cover)
103. Pearls of wisdom
104. Ideals and Values in Ramayan
105. Sexuality Education
106. Tulsidas
107. Prabhu Preet ki Amrit Varsha
108. Mera Jeewan aur mera bhara pura parivaar
109. Swasthe Raksha ke Prakrutik Upaye
110. Shruti Smriti ki amulya vani evam swastiyag
111. Katipaye Samaj Sewi Part 1 & Part 2
112. Dainik Prathna Pustak

to be continued.....

नारी का उत्तरदायित्व

पृष्ठ १ का शेष भाग

यजुर्वेद के इस मन्त्र में नारी का दूसरा नाम 'रन्ते' बताया गया। 'रन्ते' का अर्थ है, जो मन को प्रसन्न कर दे। पति या पुत्र जब बाहर से थका-माँदा घर आता है तब जो पत्नी या माँ अपने आचरण से पति या पुत्र का मन प्रसन्न कर देती है, वह 'रन्ते' कहलाती है।

इस मन्त्र में नारी का तीसरा नाम है – 'हव्या'। हवन-कुण्ड में अग्नि को समर्पित की जाने वाली वस्तु को 'आहुति' कहते हैं। आहुति को 'हवि' भी कहते हैं। जिस तरह हवन-कुण्ड में हवि भस्म होकर चारों तरफ़ सुगन्ध फैला देती है, उसी तरह जब कोई स्त्री अपने अच्छे कर्मों की सुगंध फैला देती है, हवि बनकर सबको आनंदित कर देती है, तब वह 'हव्या' कहलाती है।

यजुर्वेद के इस मन्त्र में स्त्री को चौथा नाम दिया गया 'काम्या'। – 'काम्या' का अर्थ है, जो कामना के योग्य हो, जो मन को हर ले। जब लड़कियाँ स्कूल-कॉलिज से घर लौटती हैं अथवा ससुराल से मायके आती हैं तब उनके दर्शन करके सभी प्रसन्न हो उठते हैं। माता-पिता को अपनी पुत्रियों और पति को अपनी पत्नी के दर्शन की कामना बनी रहती है। इसीलिए स्त्री का एक नाम है – 'काम्या'।

इस मन्त्र में स्त्री के लिए पाँचवा नाम आया - 'चन्द्रा' अर्थात् अत्यन्त आनन्द देने वाली। जिस तरह चाँद हमेशा मुस्काता हुआ दिखाई देता है, वैसे ही नारी अपनी मुस्कान से परिवार के सदस्यों को आनन्द देती है। परिवार के हर सदस्य की उदासी अपने हँसमुख स्वभाव से दूर कर देती है।

प्रस्तुत मन्त्र में नारी का एक नाम 'ज्योति' है। नारी अपने मन, बुद्धि की ज्योति से घर का अन्धकार दूर कर देती है। यदि वह समाज अथवा देश की नेता बनती है तो अपने नेतृत्व से सबको प्रकाशित कर देती है।

यजुर्वेद के इस मन्त्र में नारी का अगला नाम बताया गया - 'अदिति'। यहाँ 'अदिति' का अर्थ है – अविनाशी आत्मा। नारी अमर आत्माओं को जन्म देकर सृष्टि को अमिट रूप से चलाती रहती है। अदिति देवताओं को जन्म देती है। पुराण के अनुसार अदिति देवताओं की माता है। जो स्त्री देवता-स्वरूप सन्तानों को उत्पन्न करती है, वही 'अदिति' कहलाती है।

इस यजुर्वेदीय मन्त्र का अगला शब्द है – 'सरस्वति'। जो स्त्री ज्ञान-विज्ञान से भरपूर होती है, विद्या युक्त होती है, सरस वाणी वाली होती है, जिसके स्वर में वीणा की मधुरता होती है, वही 'सरस्वती' होती है।

प्रस्तुत मन्त्र का अगला शब्द है - 'महि' अर्थात् अत्यन्त प्रशंसा करने योग्य। जिसकी महिमा हो, जिसका गौरव हो। जिसके गुणों को देखकर मन में आनन्द भर जाता है, वह नारी 'महि' कहलाती है।

इस मन्त्र में नारी के लिए दसवाँ शब्द आया 'विश्रुति'। जो अनेक अच्छी बातें जानने वाली होती है। जो शास्त्र के अलावा ज्ञान-विज्ञान की बहुत सारी बातें जानती है, वह 'विश्रुति' बनती है।

नारी के लिए एक और शब्द आया– 'अघ्न्या' अर्थात् जिसे ताड़ना न दी जाय, जिसे मारा-पीटा न जाय। यदि 'अघ्न्या' शब्द को समझ लिया जाये तो 'Domestic Violence' समाप्त हो जाएगा, घर में शांति का राज्य हो जाएगा ।

अन्त में मन्त्र ने कहा – **एता तेअघ्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात्** – अर्थात् हे स्त्री ये सारे तेरे नाम हैं। तू उत्तम गुणों के लिए मुझको उपदेश किया कर, ताकि मैं उत्तम कर्म कर सकूँ।

उपर्युक्त सभी नामों को सार्थक बनाने में नारी को अपने उत्तरदायित्व पर पूरा ध्यान देना पड़ता है। तब कहीं जाकर घर, परिवार, समाज और राष्ट्र सुख के धाम बन पाते हैं।

रमावती सोयम्बर गंगा जी अब न रहे

बि. बिसेसर

गत सप्ताह नवम्बर २०१५ को लम्बी बीमारी के बाद रमावती सोयम्बर अपने नौ बच्चों को छोड़ कर चली गई । उनके पति श्री जगदेव सोयम्बर ग्राँबे आर्यसमाज के जन्मदाताओं में से एक थे। एक पौराणिक सभा में स्वामी ध्रुवानन्द के जरिये प्रचार के बाद श्री ज. मितारू, श्री द. बिसेसर, श्री ज. सोयम्बर, श्री ज. पंचम ग्राँबे आर्यसमाज की स्थापना की जो आज उनकी चौठी पीढ़ी चला रही है।

माता जी के सभी बच्चे ऊँचे स्थान पर कार्यरत हैं, उनके बेटे राजेन्द्र आर्यसमाज के प्रधान है। उनके बड़े बेटे हमेशा कहते हैं 'बैगन बारी में करेला तोड़े मत जाना' भोजपुरी संगीत में अपने माता-पिता का नाम रोशन किया।

हम ग्राँबे आर्यसमाज परिवार को सहानुभूति प्रकट करते हैं और उनके बताये हुए मार्ग पर चलने का दृढ़ संकल्प लेते हैं और अपने बाल बच्चों से यही आशा रखते हैं कि संमार्ग आर्यसमाज और वैदिक धर्म पर चलकर सिद्ध भरें। यही हमारी पूर्ण आशा है तन, मन, बन से सेवा करते रहे।

DEATH IS THE BROTHER OF SLEEP DIE WITHOUT FEAR

Death is just a long sleep. We die every day for hours. In sleep, we are transported to a world of no identification, no existence and no possession. When we wake up, we are back to normal routine work. I am so and so ,and I have this and that to do. Death is also like a short passage through the dark tunnel and we come back to light and life again.

The body is perishable but the soul is immortal and it simply changes bodies as we change clothes. Death is not a torturing or frightening experience. Some religious scriptures have described death as something very horrible. The lord of death Yama comes and pulls the hair of the dying person and drags him through burning charcoal and hell fire. Some people still believe in such stories about hell and heaven which are not geographical places.

According to the Bhagavat Gita, the soul which is immortal, invisible and formless cannot be burnt, drowned and pierced with weapon.

God is unconditional love and merciful. Man is made of free will. He is the creator of his own destiny. He reaps what he sows. The soul is one, but has many lives as man or woman, trees and plants, insects, birds and other animals.

After the cremation of the dead, there is no other rite to be done, except the burying of the ashes and the performing of yaj/hawan for three days for the purification of the house and environment.

The cycle of birth and death is a normal procedure of this universe. There is no need to be afraid of death and mourn for days, months and years. There is no need to do Shrādha and tarpan for the departed soul which comes again to experience new life. Let us prepare to come again by doing good actions. We will definitely get the body we deserve in the next life, until then let us celebrate life and get ready to die without fear.

Dipnarain Beegun

गतांक से आगे

परमपिता परमात्मा का आदेश : मनुर्भव

आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री,
वेद प्रवक्ता, सम्पादक-अध्यात्म पथ
संपर्क - फ़्लैट नं० सी.१ पूर्ति अपार्टमेंट (एक-ब्लॉक) विकासपुरी नई दिल्ली - १८

आर्यसमाज के दस नियम सार्वभौम मानवधर्म के स्वर्णिम सूत्र हैं। इन नियमों में ईश्वर अस्तित्व, ईश्वर उपासना, वेद निष्ठा, सत्यनिष्ठा, धर्माचरण, विश्व का उपकार, यज्ञ भावना, विद्या प्रेम, समष्टि का समन्वय आदि मानव धर्म इन सूत्रों का समावेश है। ये सभी सूत्र मानव धर्म के प्राण हैं। अतः आर्यसमाज कोई मत, मजहब नहीं अपितु विश्वधर्म या मानव धर्म प्रचारक संगठन है।

प्रत्येक को अपनी उन्नति से संतुष्ट न होना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए। कितना प्यारा चिन्तन है –

पावक की लपटों में पड़कर सोना कुन्दन बन जाता है।
भावशुद्ध हो तो छोटा-सा धागा रक्षा बन्धन बन जाता है।
संघर्षों की भट्टी में तपना छोटी बात नहीं ।
त्याग तपस्या से मानव माथे का चन्दन बन जाता है ।

प्रत्येक मानव का धर्म है – मानवता। मानवता के दिव्य गुणों का वर्णन इस प्रकार है – (१) निर्भयता (२) अन्तःकरण की शुद्धि (३) ज्ञानयोग में स्थिति (४) दान (५) दम (६) यज्ञ (७) स्वाध्याय (८) तप (९) सरलता (१०) अहिंसा (११) सत्य (१२) अक्रोध (१३) त्याग (१४) शान्ति (१५) चुगली का अभाव (१६) प्राणियों पर दया (१७) कृपा (१८) निर्लोभता (१९) कोमलता (२०) लज्जा (२१) अचपलता (२२) तेज (२३) क्षमा (२४) धैर्य (२५) पवित्रता (२६) द्रोह का अभाव और (२७) अभिमानी न होना। ये सब दैवी सम्पदा को प्राप्त हुए मानव के लक्षण हैं।

संस्कृति के हित कट जाए वो माथ मुझको दे,
गरीबों को जो उठाले वो हाथ मुझको दे।
तड़प उठे देखकर पराई पीड़ा को,
दिल वो देव दयानन्द-सा नाथ मुझको दे ।।

महर्षि दयानन्द में मानव के प्रति करुणा का भाव चरमोत्कर्ष पर था, संन्यासी होने पर भी उन्होंने संसार के जीवों को तथाकथित वैरागियों के भांति उपेक्षित कर दया और आनन्द के अमृत से वंचित नहीं रखा, सच तो यह है कि वह मानवता के उद्धारकों में इस दया और आनन्द का पात्र प्राणिमात्र को बनाकर वह मूर्धन्य स्थान के अधिकारी बन गए हैं ।

अनूपशहर में एक दुष्ट ने उन्हें विषयुक्त पान दिया, चबाने से पता चला तो उन्होंने न्योलि क्रिया द्वारा वमन कर विष निकाल दिया। वहाँ सैयद मुहम्मद तहसीलदार आपका भक्त था। उसने हत्यारे को पकड़कर बंदीगृह में डाल दिया। कुछ समय के बाद वह स्वामी जी की सेवा में आया तो स्वामी जी ने देव सुलभ अप्रतिम दयालुता का परिचय देते हुए यह स्मरणीय वाक्य कहा कि मैं संसार को कैद कराने नहीं आया हूँ अपितु कैद से छुड़ाने आया हूँ ।

जिसको मेहनत से बहाना पसीना आता है ।
फटा आंचल दुखी दुर्बल का सीना आता है ।
चाहता और के जीने में जो अपना जीना ।
सच तो यह दुनिया में उसको ही जीना आता है।

अपने प्रसिद्ध नाटक में महाकवि जयशंकर प्रसाद ने प्रश्न उठाया था कि मानव में क्या वह तन्तु है कि वह ऐसा जन्तु बन सके जो दुर्दान्त मानव हो। इसकी मैं कल्पना नहीं कर सकता किन्तु जिसकी कल्पना भी उनके लिए इतनी भयावह थी, आज मानव शरीरधारी दानव से भी दुर्दान्त बनकर न केवल उन्मुक्त घूम रहे वरन् जिधर देखो हर तरफ़ लड़ाई-झगड़ा, कहीं धर्म के नाम पर तो कहीं सत्ता के नाम पर।

लड़ाई-झगड़े हर मुकाम पर,
यहाँ तक कि लड़े धर्म के स्थान पर ।
यही हालत रही गर, तो लड़ेंगे मुर्दे क़बिस्तान पर ।।

दुष्परिणाम यह है कि जिन लोगों के बारे में स्त्री पूर्णतः आश्वस्त थी उनकी दृष्टि इतनी पवित्र है जितना अपना उसका शरीर ही नहीं उनसे भी आज वह अपनी अस्मिता की रक्षा की आशा नहीं कर सकती।

आइए हम लोग 'मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्' इस दिव्य आदेश का पालन करें, इसके मार्ग को समझें मानव धर्म को अपना धर्म बनाएँ और यह संकल्प लें कि हम मानव बनेंगे। यदि हमारा यह संकल्प और इसके प्रति हमारी तैयारी निर्विकल्प हो तभी हम अपने आपको वैदिक धर्म की जय बोलने का अधिकारी बना सकते हैं ।

इस जिन्दगी में बन्दे, कुछ ऐसा काम कर जा।
आया है इस जहाँ में, कुछ पैदा नाम कर जा।।
निर्माणों के पावन युग में, हम मानव निर्माण न भूलें।
स्वार्थ साधना की आंधी में, वसुधा का कल्याण न भूलें।।

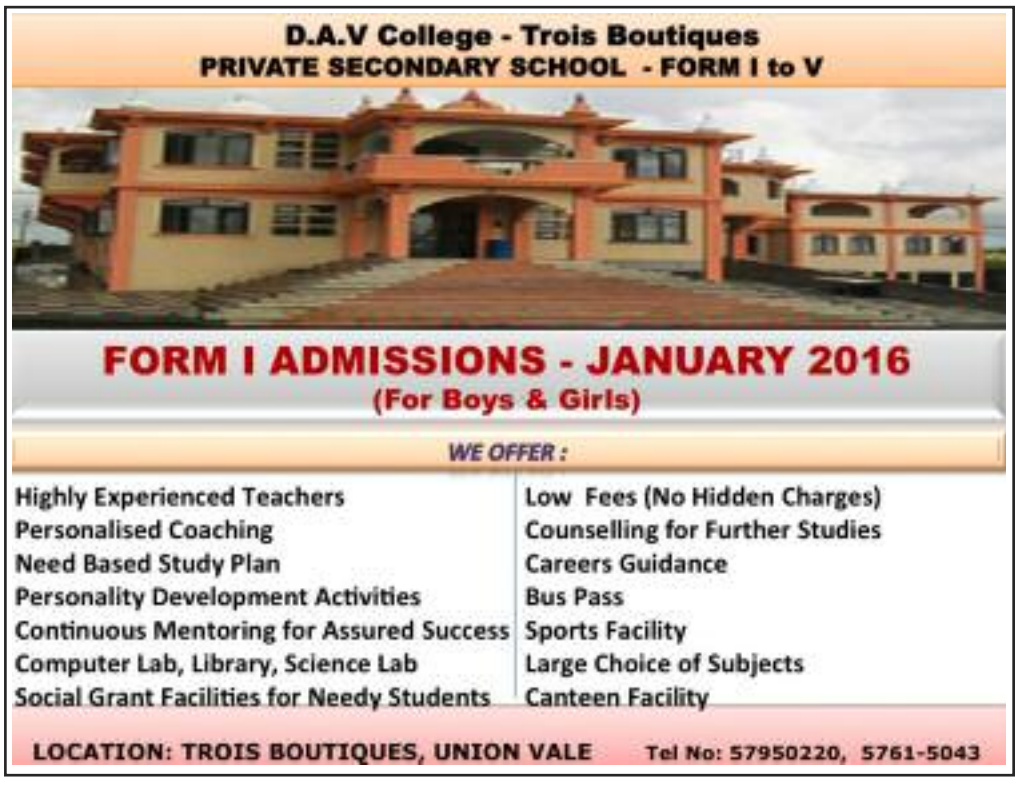

कस्त्वा विमुञ्चति स त्वा विमुञ्चति कस्मै त्वा विमुञ्चति तस्मै त्वा विमुञ्चति।
पोषाय रक्षसां भागोऽसि।

यजुर्वेद म०२, मं० २३

पंडिता राजवन्श सोलिक

शब्दार्थ :- **कः** - कौन, **त्वा** - उस यज्ञ को, **विमुञ्चति** - छोड़ता है, **सः** - यज्ञ का, **भाग** - अंश, **कस्मै** - किस प्रयोजन के लिए, **तस्मै** - जिससे, **पोषाय** - पुष्टि आदि गुण के लिए, **रक्षसाम्** - दुष्ट प्राणियों का, **असि** - होता है।

भावार्थ :- *यजुर्वेद के दूसरे अध्याय का यह तेईसवाँ मन्त्र है। इस मन्त्र का ऋषि अर्थात् मन्त्रद्रष्टा 'सत्यस्य' है और देवता अर्थात् 'विषय' प्रजापति है।*

इस मन्त्र में यज्ञ विषय पर विशेष प्रकाश डाला गया है। इसमें यह प्रश्न उठाया गया है कि मनुष्य को दुखों और बाधाओं से बचाने के लिए प्रेरणा देने वाला कौन है? उत्तर मिलता है कि वह सुख स्वरूप परमात्मा ने जब जगत् की रचना की और उसमें जड़ और चेतन पदार्थों की उत्पत्ति की तो उसने अपने श्रेष्ठ रचना चेतन जीव अर्थात् मनुष्य को यह आज्ञा दी कि यदि वह इस संसार में बाधाओं से छूटकर सुख प्राप्त करना चाहता हो तो उसे श्रेष्ठ कर्म यज्ञ को करना है। 'यज्ञ' ही वह साधन है, जिससे सुख प्राप्त करके मनुष्य अपने और जगत् के सभी प्राणियों का कल्याण कर सकता है।

परमात्मा ने मनुष्य को कर्म करने की स्वतन्त्रता दी है और साथ-साथ अच्छे वा बुरे कर्मों का निर्णय करने के लिए बुद्धि और उसके विकास के लिए वेद ज्ञान दिया है। तृण से लेकर पहाड़ तक अर्थात् छोटे-से-छोटे पदार्थ से लेकर जितने भी बड़े पदार्थ हैं, उन सबका ज्ञान वेदों में है। इस मन्त्र में यह बताया गया है कि मनुष्य प्राणी का सर्वोत्तम सुख यज्ञ करने में है। जो मनुष्य यज्ञ नहीं करता, वह परमात्मा की आज्ञा का उल्लंघन करता है। जो परमात्मा की आज्ञा का उल्लंघन करता है, वह स्वाभाविक रूप से परमात्मा की कृपा से दूर हो जाता है। परमात्मा उसे छोड़ देता है और जिसको परमात्मा छोड़ देता है, वह दुख भोगता है। जिस प्रकार एक आज्ञाकारी पुत्र यदि अपने पिता की आज्ञा का पालन करते हुए उसके बताए हुए कर्मों को श्रद्धा पूर्वक करता हुआ अपने दायित्व को निभाता है तो पिता भी अपनी मेहनत से कमाई हुई पूंजी को उसे देने में ज़रा भी संकोच नहीं करता। वैसे ही परमात्मा भी अपने आज्ञाकारी भक्त का साथ सदा निभाता है, इसलिए वह सुखी होता है और जो यज्ञ आदि कर्मों का त्याग कर केवल भोग में लगा रहता है, वह दुखी रहता है, अनेक कष्ट भोगता है। शुभ कर्म यज्ञ को छोड़ने वाला राक्षसी स्वभाव का होकर सभी गलत कार्यों को करता है।

'यज्ञ' का अर्थ बहुत विस्तृत है। केवल यज्ञकुण्ड में अग्नि प्रज्वलित कर होम करना ही यज्ञ नहीं है। सभी अच्छे कर्म, जो अपने या संसार की भलाई के लिए किये जाते हैं। वे यज्ञ हैं। यज्ञ का अनुष्ठान करने वाले का मन अपने आप ही सारी बुराइयाँ एवं दुष्ट कर्मों से हटकर सत्कर्मों में लग जाता है। मनुष्य के लिए पंच महायज्ञ का विधान है और उन पंच महायज्ञों को नित्य करने वाला अपने श्रेष्ठ मानव होने का मार्ग प्रशस्त करता है। मनुष्य अपने प्रतिदिन के कर्मों से प्रदूषण फैलाकर वातावरण को दूषित करता है, वह तो शुद्ध वायु का सेवन करता है, परन्तु अपने अन्दर से दूषित वायु छोड़ता है, नित्य कर्म में कितने प्रकार के पदार्थों का सेवन करता है। उनके अवशेष वह फैंकता है। कई प्रकार के यन्त्रों से संसार के लोगों के जीविकार्थ खाने-पीने व प्रयोग में लाने वाली वस्तुओं का निर्माण होता है। इन सब से भी कितने प्रकार का प्रदूषण फैलता है। हर एक पदार्थ के दो पहलू होते हैं - एक अच्छा और एक बुरा। जहाँ अच्छाई से सकारात्मक स्थिति होती है, वहाँ बुराई से नकारात्मक स्थिति उत्पन्न होती है। जहाँ बड़े आविष्कारों से संसार प्रगति पर प्रगति करता जा रहा है, वहाँ उसका जो नकारात्मक (Negative) प्रभाव, मशीनों के इंजन आदि से जो 'कार्बन डायऑक्साइड' आदि निकलता है, वह लोगों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालता है।

अग्नि में वह शक्ति है कि वह उसमें डाली हुई पदार्थ को कई गुना बढ़ाकर दूर-दूर तक फैला देती है। अग्नि का काम है जलाना, उसमें जले हुए पदार्थ सूक्ष्म रूप धारण कर तेज़ी से वातावरण में फैल जाती हैं। खराब वस्तु का खराब असर होता है और पवित्र वस्तु का शुद्ध और सकारात्मक प्रभाव पड़ता है, जैसे अग्नि में एक छोटी सी सूखी मिर्ची दूर-दूर तक लोगों को परेशान कर देती है, जब कि थोड़ा सा घी लोगों के स्वास्थ्य पर बहुत ही लाभ पहुँचता है। अग्नि में डाला हुआ घी और पवित्र सामग्री सूक्ष्म बनकर वायु की सहायता से सूर्य तक पहुँचाती है। सूर्य 'इदन्न मम' अर्थात् यह मेरा नहीं है। इस भावना से चन्द्रमा तक पहुँचा देता है। चन्द्रमा प्रजापति की सहायता से वर्षा के रूप में धरती पर वापस भेज देता है। वर्षा से अन्न और औषधि आदि उत्पन्न होती है। पवित्र आहुति से दूषित कीटाणुओं का नाश होता है, जिससे बीमारी दूर होती है। मृत्यु के अवसर पर कई घण्टों तक मृत शरीर को घर में रखने से वातावरण दूषित होता है, लोगों के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है। इसीलिए शव को उठाने के पश्चात् घर की शुद्धि के लिए यज्ञ करने का विधान है। घी खाने से शक्ति बढ़ती है । घी थोड़ी खाने से एक मनुष्य को जितना लाभ होता है, उतना ही घी यज्ञ की अग्नि में आहुति देने से कई गुना लाभ सैकड़ों लोगों को होता है । यज्ञ करने के मुख्य चार उद्देश्य बताये गये हैं –

(१) वैयक्तिक तथा सामाजिक वायुमण्डल को शुद्ध करना ।
(२) वैयक्तिक तथा सामाजिक रोगों को दूर करना।
(३) रोग के कीटाणुओं को नष्ट करना ।
(४) वृष्टि की कमी को दूर करना ।

ये सब उद्देश्य परोपकार के लिए पूरे किये जाते हैं। जो मनुष्य यज्ञ को नित्य कर्म के रूप में करता है, वह परमात्मा का आज्ञाकारी पुत्र कहलाता है। उसे हर प्रकार का सुख प्राप्त होता है । इसलिए वेद के इस मन्त्र में परमात्मा ने मनुष्य प्राणी को यज्ञ करने की आज्ञा दी है । यज्ञ ही सर्वश्रेष्ठ कर्म है और इसको करने वाला परमात्मा का श्रेष्ठ पुत्र बनकर सदा परमात्मा के संरक्षण में सुखी रहता है।

सत्यावादी व्यक्ति सर्वहित की जो भी योजनाएँ जनता के सामने रखता है, जनता उसे भरपूर सहयोग देती है, जिससे उसकी सभी सर्वहित की योजनाएँ पूर्ण हो जाती है। जनता उसे सहयोग इसलिए देती है, क्योंकि जनता को उस पर ऐसा विश्वास होता है कि –
'यह सत्यवादी व्यक्ति है, यह हमारे दिये सहयोग का सदुपयोग ही करेगा, दुरूपयोग नहीं।

Vedas and Vedanta, Concepts and Misunderstandings (4)

Prof. Soodursun Jugessur, (Dharma Bhushan, Arya Bhushan)

Resumé of first three parts on this theme :

After bringing out the origins of the Vedas and the Vedanta, we wrote on the impact of Buddhism on Hinduism and the advent of Brahmanism, and then started the theme of Vedic realism that brings people back to solid earth, facing the realities of life.

When some people proclaimed the concept of Maya or illusion coupled to the uniqueness of the supreme Brahman (Monism) and added that the Soul (Atma) and God (Paramatma) are one and the same,(Adwaita and Aham Bramhasmi, I am you and you are me), as different from Dwaita, a new dimension was given to Hinduism. We will now show how this concept brought a strong element of indifference together with many other evils, and the cause of India's decline.

Chaturashrama and its demands

As children and as **Bramhacharis**, we have to study hard, master our lessons, compete on the athletic field and in public contests, and attain the highest standards by exercising our will and desire to excel. During this stage of evolution, where does the spirit of illusion come in? If we preach this philosophy to the youth, it will only dampen and kill this zest for excellence, competitiveness, and improvement of the self!

As a **Grihasthi** or householder, we have to work hard to raise our family, feed and clothe them, give them proper education, save for rainy days, and improve our material and social standing in a righteous way. The moment we accept the monistic theory of Vedanta and its relationship with *maya* (illusion), we have a tendency to give up everything and escape to the world of the spirit, without rightly fulfilling our duties towards our dependents. The capacity to face the day-to-day problems of survival in a competitive society, and to meet the needs of the family and the society, gets reduced, as we want to give up everything for taking refuge in the self, and merge with the universal Self.

People now speak of **practical Vedanta** where one has to shoulder one's duties with detachment towards the fruits of our actions. Without real commitment to what we do, what are the chances of our success? Unless we give ourselves heart and soul to our duties as a householder, we cannot hope to see our children grow up in a proper way, with our guidance, and to ensure that society prospers. Complete detachment and commitment are two opposite characteristics, and reconciling them is not obvious. It is here that the teachings of the *Bhagavat Gita* come in handy. A spirit of partial detachment wherein we do our duties with commitment but leave the fruits thereof in the hands of the Almighty, is possible. But accepting the theory of Vedanta with its allied Monism and its implicit relationship with *maya* (illusion) can lead us to insurmountable problems.

As a **Vanprasthi** when we are expected to re-educate ourselves after retirement for the purpose of entering **Sanyāsa** stage later, we again have to show determination and will power to rededicate ourselves to serious study of philosophical doctrines, yoga, and other forms of self-discipline. If we start from the premise that all is illusion, our very efforts will be considered as illusion! Where then will be the urge to follow the path of Vanprastha? In its place we will cherish escapism, and think that we are nothing but the soul, nay even the supreme soul. And thereby condone all our weaknesses, nay, even our transgressions and sins! Many people with such attitude get away with heinous crimes against humanity and believe that all that they have done were done by the Supreme spirit! They tolerate anything under the earth, as long as their interests are served.

6. Vedanta and Nation building

With the spread of nihilist philosophy in the first millennium, India witnessed a real decline in its capacity to maintain the laurels it had acquired during the heydays of the Vedic age. Dozens of countries surrounding India had embraced Hinduism, governed by Vedic philosophy. Aryavarta had extended from the Far East to the Far West. Art, science, trade and travel were flourishing, and people used to visit famous centers of knowledge in India. Taboo on travel and conquest came only later with the advent of further aberrations of original Vedantic concepts. Foreigners then had an easy time conquering India, and hordes of such conquerors invaded the country. India had become a weakling as the very spirit to fight for one's land and property had been killed by making people believe that everything is *maya*, and the only truth is the supreme Brahman, and we are sparks of that same Brahman, indestructible! Common belief was: ' Of what use is fighting, for the conqueror can only kill our body, but not our soul?' This belief led to the arrival of the Scythians, the Parthians, the Greeks, the Huns, the Turks, the Mongols, the English, the French, the Portuguese, and others who plundered India, and subjugated the population to years of slavish dependence. The spirit to rouse against invaders was quelled, and people had started accepting the situation as a matter of fact ordained by fate, and as part of Kaliyug.

During the British period, when India with its princes and nizams was subject to foreign domination, many reformers tried to bring back the flame of independence amidst the people. The arrival of Maharshi Dayanand Saraswati with his preaching of Vedic philosophy, again kindled the spirit of self-dependence and rebellion against foreign rule. He awakened amidst the masses the urge to say Yes to life, and fight for physical, mental and social development. **Back to the Vedas** was the clarion call! For he saw how the Vedic ideology of ' Dharma, Artha, Kama, and Moksha', i.e. Right living, economic wealth, enjoyment of that wealth, and salvation, was forgotten amidst the veil of negative *maya* concept, and how people had become fatalistic and prone to superstitions and selfish living. This had led to foreign domination, and mimicry of western civilization by the elite who saw in the invaders the symbol of strength and culture, while they were ignoring the greatness of Vedic culture.

In the name of religion the Hindus had created narrow walls among themselves, distinguishing one another on the basis of caste by birth, and not on the basis of the Varna system as propounded in the Vedas, whereby one is classified as per his/her inborn talents and education. The entire spectrum of religious, social, cultural and political life was dominated by caste distinctions, and this gave the foreigner a fertile ground to further sow the seeds of mistrust, inequity and discrimination that kept the society ever weak. Thanks to his forthright and rational interpretation of the Vedas, Maharshi Dayanand Saraswati breathed new life in both the open-minded elite and the common man. He criticized post-Shankara Vedanta which had been wrongly portrayed and propagated, and which had brought the downfall of the Indian culture and civilization. It must be reiterated that he himself had been a votary of Vedanta until he met his real guru, Swami Virjanand Saraswati, who showed him the correct way to interpret the Vedic hymns so that the spiritual and temporal concepts (yaugic and laukik) in these texts could be better understood and applied by mankind at large.

At this point it is worth recording what Shri Aurobindo, one of the greatest thinkers of modern India, had to say about Swami Dayanand's interpretation of Vedic ideas:

"It is a remarkable attempt to re-establish the Veda as a living religious scripture. Dayanand took as his basis, a free use of the old Indian philology which he found in the Nirukta. Himself a great Sanskrit Scholar, he handled his materials with remarkable power and independence. Especially creative was his use of that peculiar feature of the old Sanskrit tongue which is best expressed by a phrase of Sayana's : 'the multi-significance of the roots'. We shall see that the right following of his clue is of capital importance in understanding the peculiar method of the Vedic Rishis…….Rammohan Roy stopped short at the Upanishads. Dayanand looked beyond and perceived that our true original seed was the Veda. He had the national instinct and he was able to make it luminous—an intuition in place of an instinct."

In the same vein, Nobel Laureate **Rabindranath Tagore,** writing about Maharshi Dayanand, said: *"I offer my homage of veneration to Swami Dayanand, the great path-maker in Nothern India, who through bewildering tangles of creed and practices—the dense undergrowth of the degenerate days of our country, cleared a straight path that was meant to lead the Hindus to a simple and national life of devotion to God and service of man……"*

In our next article we will speak about the philosophical basis of Vedic realism and its present necessity for revival of Vedic way of life.

Kriyātmak yoga : Practice of yoga

The origin of the word Yoga

Yoga (pronounced as Yog) is a field of knowledge originating from the Vedas. The word Yoga is a derivative from the Sanskrit word *Yuja*, i.e. to join, unite, connect, link up.

God: the source of knowledge

The first principle of the Arya Samaj spells out that God is the first efficient cause of all true knowledge and all that is derived therefrom.

Instinctive knowledge & acquired knowledge

The human form of life is known to be the highest amongst all species but conversely at birth the other forms of life are endowed with a higher level of inborn knowledge *(swabhāvic jnāna)*. For example a puppy of 10-12 months swims and finds its way out of a pool, but a human child of the same age would drown and die. Animals know what to eat and what not to eat whereas the human child has to be fed for a much longer period.

Conversely the human offspring has a far better potential to acquire new knowledge *(neimittic jnāna)* with time. The child grows into adult and with acquired knowledge he works and get resources to buy whatever he needs. The puppy grows into a dog but has no earning power and as such will only stare at the food vendor. It satiates itself only when the vendor gives it some food.

The learning curve of human beings, another gift from God

Mankind has tremendous potential and learns from others as well as from God's creation - the universe. He has been gifted by a brain through which he can sift the good from the evil, voice to communicate to others. He can complain and have his problems solved (e.g. consult a doctor when sick) whereas the other living species cannot do so.

Man has efficiently used acquired knowledge on which he has built up further knowledge and invented so many things. These inventions can be traced back to the Vedic age when many sages were applying the Vedic knowledge into their day-to-day life and through Yoga they God who gifted them with a clear mind to elucidate further the seminal knowledge of the Vedas.

The Vedas and the subsequent codification of the Vedic knowledge

God, the all-Merciful had given the knowledge of the Vedas only to human beings, more specifically to four rishis (sages) shortly after He created the human species. These sages in turn transmitted that knowledge to others.

In due course other sages codified the Vedic knowledge into several branches of knowledge, amongst which the six Vedic darshan shāstras (philosophy of Yoga, Sāmkhya, Vaisheshika, Nyāya, Vedānta & Mimānsā respectively by Sages Patanjali, Kapila, Kannāda, Gautama, Vyāsa, Jaimini) all point to *moksha* or the liberation of the soul from suffering (deep-rooted in the cycle of birth and death) as the one and only ultimate goal of human life. These six branches of philosophy are distinct codifications elucidating he way to attain self and God-realisation.

A common example of such codification is the famous Manusmriti by sage Manu who is also known as the law-giver.

Yoga : Meditation in the Vedas

Tasmādyajyātasarvahutarichah… (YajurVeda 31/7) states that to live a fulfilled life, mankind should adhere to the edicts / teachings of the Vedas and meditate upon God who has blessed us with such knowledge.

The characteristics of God - the object of meditation

Sa paryagāchukramakāyamavranamasnāviram... (YajurVeda 40/8) depicts the characteristics of God as omnipresent (present everywhere & at all times); prompt in his actions; pure and perfect; ever aware of all our thoughts, speech and actions; ever existent (has no beginning and no end). He possesses infinite power and is self-proven.

God never gets entangled in the cycle of birth and death, nor needs nervous, blood circulation, lymphatic, endocrine or other systems. He is all-Virtuous, Flawless, and all Knowledgeable. He never indulges in evil, ignorance and suffering. He is the only one worthy of adoration and worship.

As Benefactor, God has, through the Vedas, gifted mankind with all the knowledge required to achieve the ultimate goals - *dharma*, *artha*, *kāma* and *moksha* (commonly known as the *purushārtha chatushthaya*).

Yogābhyāsa or the practice of Yoga in our daily prayers

Expounding on the mantras of the *Ishvara Stuti Prārthanā Upāsanā* in the Samskāra Vidhi, Maharishi Swami Dayanand Saraswati has explained '*kasmei devā yahavishā vidhema'* in unequivocal terms as *yogya yogābhyāsa*, i.e. contemplation and meditation upon the all-Blissful God, be ever alert and apply our inner faculties in following His command and take time to praise Him as well as pray for His blessings.

God helps only those who put up efforts to realise their goals

In the Aryodeshyoratnamālā and the *Swamantavyāmantavya* of the Satyārtha Prakash Maharishi Dayānand affirms that God showers his blessings only when we have put up our utmost efforts in accomplishing our tasks.

Upāsanā : an integral part of our day-to-day living

Yunjate mana uta yunjate dhiyo… (Rig. Veda 5/81/1) spells out that souls dwelling in the human form of life should daily spend time in *upasnā* (contemplation and meditation upon the Almighty).

Yunjanah prathamām manastatvāya... (YajurVeda 11/1) elucidate on the subject of Yoga as part and parcel of our daily routine whereby we harmonise our mind, body and spirit in communion with God and thereafter with His blessings we develop *medhā buddhi* (both creative and critical thinking skills.)

End result of Yoga practice

Yoge yoge tavastaram... (YajurVeda 11/14) further explains that he who regularly spend time to perform *Yogābhyāsa* develops physical, mental and spiritual aptitudes whereby he looks at all living beings as friends and works for the benefit of all. He attains ātma *shākshātkār* (self-realisation) and with further perseverance he achieves *Ishvara shākshātkār* (God-realisation.)

The meaning of Yoga as per Maharishi Patanjali

It flows from the above that Yoga is not a bundle of exercises to remain fit physically as we commonly believe. The *āsana – vyāyāma* is needed to keep the body fit. A healthy body and sound mind are the pre-requisites to take the plunge into the *ashtānga yoga* (eight-fold process of Yoga: **Yama, Niyama, Asana, Pratyāhār, Prānāyāma, Dhyāna, Dhārana, Samādhi)** as elucidated by Maharishi Patanjali in his treatise, Yoga Darshanam which contains 196 sutras or aphorisms.

(... to be continued)

Yogi Bramdeo Mokoonlall, Darshanācharya
(Snatak - Darshan Yog Mahavidyālaya)
Arya Sabha Mauritius
Tel : 2122730; cell : 5795 0220

Bibliography :

Yajur Veda Bhāshya, RigVeda Bhāshya, Satyārtha Prakāsh, Rig Vedādi Bhāshya Bhumikā, Samskāra Vidhi, Aryodeshyoratnamālā *(Maharishi Dayānand Saraswati)*
Yoga Darshanam *(Maharishi Patanjali, Vyāsa Bhāshya & Yogārtha Praakāsh Swami Satyapati Ji Parivrājak)*

ARYODAYE
Arya Sabha Mauritius
1,Maharshi Dayanand St., Port Louis,
Tel : 212-2730, 208-7504, Fax : 210-3778,
Email : aryamu@intnet.mu,
www.aryasabhamauritius.mu
प्रधान सम्पादक : डॉ० उदय नारायण गंगू,
पी.एच.डी., ओ.एस.के., आर्य रत्न
सह सम्पादक : श्री सत्यदेव प्रीतम,
बी.ए.,ओ.एस.के,सी.एस.के.,आर्य रत्न
सम्पादक मण्डल :
(१) डॉ० जयचन्द लालबिहारी, *पी.एच.डी*
(२) श्री बालचन्द तानाकूर, *पी.एम.एस.एम, आर्य रत्न*
(३) श्री नरेन्द्र घूरा, *पी.एम.एस.एम*
(४) योगी ब्रह्मदेव मुकुन्दलाल, *दर्शनाचाय*
Printer : BAHADOOR PRINTING CO. LTD
Ave. St. vincent de Paul, Les Pailles,
Tel : 208-1317, Fax : 212-9038